# निर्वाचकीय राजनीति एवं जातीय ध्रुवीकरण : राजस्थान की 13वीं विधानसभा के संदर्भ में

डॉ. पूरण चन्द जाट
सह आचार्य, राजनीति विज्ञान
राजकीय महाविद्यालय,कोटपूतली

लोकतंत्र के सफल संचालन के लिए निर्वाचन एक आवश्यक शर्त होती है । निर्वाचन ही लोकतंत्र को औचित्यतता प्रदान करते हैं। निर्वाचन के द्वारा जनता को यह अवसर प्राप्त होता कि वह प्रतिनिधियों को चुनें। चुनाव का महत्व केवल हार जीत तक ही सीमित नहीं होता है वरन् यह शासन संचालन एव जवाबदेयता से भी जुड़ा है। चुनाव का संबंध मत से जुड़ा है। व्यक्ति का मत ही यह तय करता है कि किस व्यक्ति या दल को शासन का अवसर प्राप्त होगा। शासन की बागडोर सही हाथ में रहे इसके लिए जरूरी है कि व्यक्ति अपने मत का सही प्रयोग करें। किंतु आम नागरिक के पास इतनी शिक्षा, अनुभव व समय नहीं होता है कि वह उचित तरीके से अपने मत का प्रयोग कर सके।

निर्वाचन राजनीति के संचालन का एक आयाम जातीय राजनीति भी है इसके बारे में समाज विज्ञानवेत्ता लगातार कई निष्कर्ष निकालते रहे हैं। इनमें सबसे लोकप्रिय निष्कर्ष यह है कि जाति सामाजिक रुप से तो कमजोर हुई है किंतु राजनीतिक रूप से उसकी पकड़ मतदान राजनीति पर ओर अधिक मजबूत हो गई है। इस संदर्भ यह भी महत्पूर्ण हैं कि जातिय समूह में आंतरिक प्रतिस्पर्धा लगातार बढ़ती जा रही है । इसलिए जाति राजनीति एक व्यक्ति का वर्चस्व क्षेत्र नहीं रह गया है। हर जाति समूह की अपनी अपनी प्रतिभाएं है और उनका अलग–अलग वर्चस्व है। ये प्रतिभाए प्रांतीय क्षेत्रीय और यहां तक कि गांव तक भी सीमित है और सभी का प्रभाव मंडल मिलकर एक सामूहिक प्रभा मंडल बनाता हैं। 1970–80 के दशक में जातिय राजनीति की राष्ट्रीय प्रतिभायें थी जिनका प्रभाव क्षेत्र व्यापक था और उनके प्रांतीय संस्करण उन्हें ताकत देते थे । जातीय नेतृत्व अपने वर्चस्व को बनाए रखने के लिए राजनैतिक कौशल (हिंसा व दबाओं) को बनाए रखते हैं।

भारतीय लोकतंत्र के समक्ष जातिगत वास्तविकताऐं आजादी के समय से कठिन चुनौती के रूप में विद्यमान रही है। सामाजिक स्तरीकरण के प्राचीन विधान ने समाज को विभिन्न स्तरों में जन्म, शिक्षा, व्यवसाय के आधार पर विभाजित किया हैं। असमानता और विभेद के बीज तत्व यहीं से अंकुरित होकर गहराते गए, यहां तक की पूरा समाज उच्च व निम्न जातीयो में विभक्त होकर सुविधामूलक विशेषाधिकार वर्ग व वंचित समुदाय में रुपांतरित हो गया। जब देश आजाद हुआ उस समय पिछड़ी दलित जातियां, महिलाएं व अल्पसंख्यक वर्ग सामाजिक प्रगति व समकक्षता की धारा में कमजोर

सुविधाहीन स्थिति में थे। इसका कारण था कि प्राचीन काल से इन वर्गो के विषय में प्रचलित पूर्वाग्रह व वह उनसे जुड़े संकीर्ण दृष्टिकोण, इस कटु वास्तविकता को ध्यान में रखते हुए संविधान निर्माताओं ने समानता के मूल अधिकार के साथ सकारात्मक संरक्षण का प्रावधान रखा, ताकि सभी समुदायों को सामाजिक व्यवस्था में गौरव, सम्मान व निर्भरता के स्तर पर लाया जा सके। यह माना जा सकता है कि लोकतंत्र के तर्क को संवैधानिक लक्ष्य के साथ ही सामाजिक आर्थिक विकास की तरफ से परखा जाना चाहिए। यह सामूहिक विकास की वैधता अर्जित करने वाला सामाजिक पक्ष है, एक सामाजिक संवाद है जो उत्पन्न परिस्थितियों के बीच समाधान और गतिशीलता का रास्ता ढूंढता है, यह बहुस्तरीय जन सहभागिता की अनिवार्य विशेषता से जुड़ा है। इसका संबंध जीवन मूल्यों व संदर्भो से है। इसमें यथा स्थितिवाद के विरुद्ध सख्त प्रतिरोध का दृष्टिकोण मिलता है जो उपयोगी सामाजिक वातावरण के लिए जरुरी है। जाति आरक्षण एक लंबी ऐतिहासिक प्रक्रिया का परिणाम है। अनेक कारणों से सामाजिक स्तरीकरण के अंतर्गत जाति व्यवस्था का उद्‌भव और विकास हुआ। जाति व्यवस्था ने दोहरे मानदंडों पर आधारित पक्षपात, शोषण, उत्पीड़न को जन्म दिया। आरक्षण बेहतर सामाजिक विधान व नियोजित बदलाव के लिए वास्तविक पहल है।

आरक्षण के फलस्वरुप रोजगार शिक्षा, व्यवसाय, प्रशासन व नेतृत्व जैसे सामाजिक क्षेत्रों में भिन्न–भिन्न जातियों की गतिशीलता बढीं है, उनमें आत्मविश्वास का संचार हुआ ह। वंचित वर्गों की बेहतरी के लिए अनेक योजनाएं व विकास कार्यक्रम चलाए जा रहे है, जिनकी वैधता से इनकार नही किया जा सकता है। पिछड़ी और दलित जातियों के सम्मान, समृद्धि, खुशहाली की रक्षा के लिए आरक्षण जैसे प्रावधानों को बनाए रखना तर्कसंगत है, अच्छे जीवन की परिकल्पना समस्त राजनीतिक आर्थिक और सामाजिक विचारधाराओं एवं सिद्धांतों का सार तत्व है। समाज में पिछड़ी व वंचित जातियों की भूमिका महत्वपूर्ण रही है।

प्रांतीय राजनीति में वर्चस्व सम्पन्न पिछडें समूह के नेताओं का है। पिछडें समूह राजनीति के वर्चसव वाले सभी नेता जयप्रकाश आंदोलन की वैचारिक पृष्ठभूमि से निकले हैं। उनकी वैचारिक पृष्ठभूमि समाजवादी और सामाजिक न्याय से जुड़ी रही हैं। किन्तु 1990 और उसके पश्चात के द"ाक में वे अपने समूह के वर्चस्व प्रतीक बन गए। प्रारम्भ में सभी का संघर्ष नेहरू के वं"ावाद के खिलाफ था, किन्तु आगे चलकर ये सभी अपने–अपने परिवार और जाति समूह के लिए लड़ते, संघर्ष करते रहे है। इन प्रतिभाओं में लालू प्रसाद यादव, मुलायम सिंह, एनटीआर, चौटाला परिवार आदि नजर आते हैं। इस जातीय नेतृत्व का स्वरूप प्रांतीय है और उसका वर्चस्व क्षेत्र भी एक ही प्रांत हैं और जकड़न ऐसी कि राष्ट्रीय राजनीति के प्रभावी व्याख्याकार भी इन्हीं की शरण में है और फिर इन्हीं के वर्चस्व में अपना विस्तार देखते हैं।

दलित राजनीति के लगातार बदलते स्वरूप की व्याख्या भी जातीय राजनीति के अंतर्गत करना गलत नहीं होगा। पिछले कुछ चुनाव में चुनाव आयोग के सौजन्य से प्रत्येक लोकसभा और विधानसभा के प्रत्याशियों की संपत्ति के घोषित विवरण आ रहे हैं। जो यह सिद्ध करते हैं कि राजनीति का कोई भी प्रयोगकर्ता अपनी आर्थिक क्षमताओं से अधिक संपन्न हैं और उसने अपनी संपत्ति का अपार विस्तार किया हैं। इसमें दलित भी पिछडें नहीं हैं। एहसास तो यह होता है कि यदि राजनीति व्यवसाय है तो वह सबसे अधिक लाभकारी और आर्थिक संपन्नता का सुनिश्चित विकल्प है और इसी कारण राजनीतिक प्रतिस्पर्धा का विस्तार भी हुआ है। दलित समूहों के नेतृत्व में जगजीवन राम, कांशीराम, मायावती, रामविलास पासवान का उल्लेख महत्वपूर्ण है। 1990 के दशक में कांशीराम और मायावती उत्तर भारत के पंजाब, हरियाणा, उत्तर प्रदेश, राजस्थान और मध्य प्रदेश में दलित वर्ग की शक्ति के संगठक बने। मायावती सामाजिक विद्वेष और विभेद की बात नहीं करती, वे अपने निर्णय और प्रशासन क्षमताओं का भी बार–बार उल्लेख करती है। उत्तर प्रदेश में सफलता के आधार पर राजनीति की प्रमुख साझेदार होना चाहती हैं।

1990 के दशक के प"चात पिछडे और दलित समूह के राजनीतिक और आर्थिक वर्चस्व विस्तार हुआ है। इन समूहों में आपसी नाराजगी भी बढ़ी है। पिछले दो दशकों से राजस्थान में जाति आंदोलन से जुड़े प्रश्न एक साथ कई संकेत दे रहे हैं। पहला यह कि विभिन्न पिछड़े और दलित समूह में राजनीतिक शक्ति की साझीदारी के लिए प्रतिर्स्पधा बढी ही नहीं है वरन हिंसात्मक भी हुई है। दूसरा, इन समूहों के अभिजनों में राजनीतिक आकांक्षाएं अधिक उग्र हुई हैं। तीसरा, इन समूहों में शिक्षा और अवसरों के विस्तार के साथ–साथ अपनी स्थितियों की किलेबंदी की इच्छाएं भी उग्र हई हैं। आंदोलन लंबे, उग्र और अधिक संगठित नजर आते हैं। चौथा, आंदोलनों को चुनाव के माध्यम से राजनीतिक सत्ता की प्राप्ति को माध्यम के रूप में बदलने के प्रयास और पांचवें व अंतिम राजनीति की भाषा हिंसात्मक और अधिक प्रभावी रणनीति से जुड़ी नजर आती है। इन सबके होते हुए राजनीतिक भय क्या हो सकते हैं, इस पर विचार इस टिप्पणी से ही प्रारंभ किया जाए कि हर जाति समूह के अपने अपने प्रभाव क्षेत्र होंगे और उनमें किसी भी अन्य समूह का प्रवेश या प्रभाव हिंसा को जन्म देगा। यही नहीं जहां ऐसे समूहों की प्रतिस्पर्धा बराबर की है वहां राजनीति स्थाई रूप से उग्र और हिंसात्मक होगी।

पिछले दो दशकों में राजस्थान में जाति के अति राजनीतिकरण ने गंभीर राजनीतिक परिस्थितियां पैदा की है। राजस्थान तेरहवीं विधानसभा के निर्वाचन की दृष्टि से महत्वपूर्ण है कि है निर्वाचन राजनीतिक दल, विचारधारा नेतृत्व व कार्यक्रम आधारित कम और जाति आधारित अधिक थे। चुनाव पूर्व की राजनीतिक परिस्थितियां भी सामाजिक सहिष्णुता के सरोकारों की दृष्टि से बेहद जटिल थी। यह तथ्य है कि निर्वाचकीय राजनीति आधिकाधिक जाति पर केन्द्रीत हुई है। राजनीतिक दल जाति के समर्थन को हासिल करने के लिए सामाजिक अभियांत्रिकी जैसी नवीन अवधारणों में विश्वास करने लगे है।

निर्वाचन की राजनीति ने जातियों की सहिष्णुता को कमजोर किया हैं। किंतु राजनीतिक अध्येयता की दृष्टि से यह प्रश्न महत्वपूर्ण है कि निर्वाचकीय राजनीति और जाति की पारस्परिक अंतःक्रिया से जातियों ने क्या क्रियात्मक आयाम ग्रहण किए है ? यह जानना महत्वपूर्ण है कि जाति और निर्वाचकीय राजनीति की अंतः क्रिया से उत्पन्न जाति के क्रियात्मक आयामों का स्वरूप क्या है ? निर्वाचकीय राजनीति में जाति एक राजनैतिक संगठन के रूप में किस प्रकार कार्य करती है ? निर्वाचकीय राजनीति में विभिन्न जातियों में राजनीतिक संबंधों का क्या स्वरूप होता हैं ? निर्वाचन में संख्यात्मक रूप से कम प्रभावशाली जाति, जिसका प्रत्याशी नहीं है, किस प्रकार गतिशील होकर कार्य करती है ?

इस लेख का उद्देश्य जाति और निर्वाचकीय राजनीति की अंतर क्रिया से उत्पन्न जाति के क्रियात्मक आयामों का विश्लेषण करना है। इस लेख का क्षेत्र राजस्थान के अलवर जिले का बानसूर विधानसभा क्षेत्र है जो स्वतंत्रता से पूर्व अलवर रियासत का भाग रहा है। इस विधानसभा क्षेत्र के अध्ययन का विशेष महत्व है क्योंकि सामाजिक संरचना की दृष्टि से यह क्षेत्र बहुजातीय है, जिसमें एक जाति संख्यात्मक रूप से प्रभावशाली है। बानसूर विधानसभा क्षेत्र में संख्यात्मक रूप से गुर्जर जाति बहुसंख्यक है, अन्य जातियों में यादव, सैनी, राजपूत, जाट, अनुसूचित जातिया पर्याप्त प्रतिनिधित्व रखती हैं

**प्रत्याशी चयन का आधार** :–

राजनीतिक दलों के लिए निर्वाचन प्रक्रिया का आरंभिक चरण प्रत्याशी का चयन बेहद कठिन व संघर्ष पूर्ण हुआ है विशेष रूप से संस्थाईकृत राजनीतिक दलों के लिए। राजनीतिक दल निर्वाचन क्षेत्र के सामाजिक ढांचे के प्रति बेहद संवेदनशील होते हैं। जाति व सामाजिक पद प्रतिष्ठा सभी राजनीतिक दलों में प्रत्याशी चयन का महत्वपूर्ण आधार रहा है।

**प्रत्याशी चयन का आधार जाति ही क्यों ?** :–

भारतीय समाज में पहचान व संगठन का आधार वर्ग न होकर जाति है। राजनीतिक दल दो कारणों से जातियों को अपनी ओर खींचते हैं। प्रथम – परंपरागत रूप में जाति का स्वरूप राजनीतिक भी रहा है राजनीतिक दलों को जाति एक बने बनाए संगठन के रूप में लाभप्रद प्रतीत होती हैं। राजनीतिक दलों की यह अवधारणा रहती है कि निर्वाचन क्षेत्र की बहुसंख्यक जाति विश्वसनीय समर्थन का महत्वपूर्ण आधार उपलब्ध कराती है। द्वितीय – राजनीतिक दलों का संगठनात्मक स्वरूप बेहद कमजोर होता है, राजनीतिक दलों की कार्यप्रणाली के कारण उनके पास प्रतिबद्ध कार्यकर्ताओं व समर्थकों का अभाव होता है। विचारधारा मुद्दे बहुत कमजोर व अपर्याप्त होते हैं। कमजोर ढॉचें के कारण राजनीतिक दल अपने प्रभाव में विस्तार के लिए जाति जैसे संगठन का सहारा लेते हैं।

**निर्वाचन एवं जातियों की पारस्परिक अंतःक्रियाओं के आयाम** :–

निर्वाचकीय राजनीति में जातियों के मध्य अंतर क्रिया के अध्ययन पर विद्वानों द्वारा सीमित ध्यान दिया गया है। इस ओर अभी तक के अध्ययनों से जातियों की अंतःक्रिया के आयाम के रूप में केवल अंतर जातीय संघर्ष को रेखांकित किया जा सकता है यह अंतरजातीय प्रतिस्पर्धा राज्यों व निर्वाचन क्षेत्रों में संख्यात्मक रूप से बहुसंख्यक प्रभावशाली जातियों के मध्य ही इंगित की गई है जैसे राजस्थान में जाट और राजपूत, आंध्र प्रदेश मे, कामा और रेड्डी गुजरात में पाटीदार और अनाविल आदि। किंतु शक्ति व प्रभाव के लिए जातियों के मध्य यह होड न केवल थोड़ी सी ऊंची जातियों के मध्य है बल्कि अन्य छोटी जाति होड़ में सम्मिलित होकर बहुसंख्यक जाति के प्रभाव को कम या अधिक करने में संलग्न देखी जा सकती हैं। दरअसल जातियों के मध्य निर्वाचकीय राजनीति की अंतः क्रिया को परस्पर ध्रुवीकरण व संघर्ष के आधार पर निम्न आयामों में इंगित किया जा सकता है।

क. **ध्रुवीकरण** :–

जाति के राजनीतिकरण और शक्ति अर्जित करने की प्रवृत्ति ने जातियों में ध्रुवीकरण को प्रोत्साहित किया है। जातियों में ध्रुवीकरण के नियम आयाम दृष्टिगोचर होते हैं।

1. **जाति का ध्रुवीकरण** :–निर्वाचन में एक जाति अपनी शक्ति एवं प्रभाव में वृद्धि के लिए तीन परिस्थितियों में राजनीतिक रूप से एकजुट होती है। प्रथम, जाति अपने किसी सामूहिक हित या उद्देश्य को लेकर लामबंद हो। द्वितीय, निर्वाचन क्षेत्र से जाति का व्यक्ति उस क्षेत्र में प्रभावशील किसी राजनीतिक दल का प्रत्याशी हो। तृतीय, किसी निर्वाचन क्षेत्र में संख्यात्मक रूप से प्रभावशाली जाति की प्रमुख राजनीतिक दलों द्वारा अनदेखी कर देने पर। बानसूर विधानसभा क्षेत्र के निर्वाचकीय आंकड़ो पर गौर करने पर यह प्रतीत होता है कि संख्यात्मक रूप से बहुसंख्यक जातियों गुर्जर, यादवों व सैनीयों ने प्रत्याशी के पक्ष में मतदान किया है।

2. **प्रभुत्व"ाली जाति के पक्ष में ध्रुवीकरण** :– इस आयाम में छोटी व संख्यात्मक रूप से कमजोर जाति बहुसंख्यक प्रभुत्व"ाली जाति के प्रभाव में आ जाती है। प्रभावशाली जाति के दबाव का विरोध करने में असमर्थ कमजोर जाति प्रायः ऐसा करती है। निर्वाचकीय आंकड़ों से यह स्पष्ट होता है कि जिस मतदान केंद्र पर जो जाति बहुसंख्यक है और उस जाति का प्रत्याशी है तो ऐसे केंद्रों पर अन्य जातिया उसी बहुसंख्यक जाति के पक्ष में मतदान करती हैं

3 **प्रभुत्व"ाली जाति विरोधी ध्रुवीकरण** :– बानसूर विधानसभा के निर्वाचकीय परिणामों में जातियों के मध्य अंतःक्रिया का यह आयाम स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है इस आयाम में अन्य जातिया बहुसंख्यक जाति के प्रत्याशी के विरोध में ध्रुवीकृत होती हैं।राजस्थान में इस प्रकार के आयाम में तेहरवी विधानसभा के निर्वाचन में सबसे चर्चित राजगढ़ (अलवर) व बस्सी विधानसभा क्षेत्र (जयपुर) के निर्वाचन

परिणाम है। दरअसल बहुसंख्यक जाति के विरुद्ध अन्य जातियों की ध्रुवीकरण के दो प्रमुख कारण हो सकते हैं। प्रथम, बहुसंख्यक जाति में राजनीतिक शक्ति के केंद्रीयकरण को अन्य जातियों द्वारा अस्वीकृत करना। द्वित्तीय, बहुसंख्यक जाति द्वारा अन्य जाति का दमन करना।

4. **सौदेबाजी आधारित ध्रुवीकरण** :– इस आयाम में दो या दो से अधिक जातियां पारस्परिक राजनीतिक सौदेबाजी कर एक दूसरे का समर्थन करती हैं। इस सौदेबाजी में उच्चतर या निम्नतर निर्वाचनों में समर्थन का वादा या अन्य निर्वाचन क्षेत्र में समर्थन कर ध्रुवीकृत होती हैं। बानसूर विधानसभा क्षेत्र में मीणों ने सैनीयों का समर्थन कर इस आधार पर किया कि वे निकट के विधानसभा क्षेत्र में निर्दलीय मीणा प्रत्याशी का समर्थन करें।

**ख. संघर्ष** :– जातियों में ध्रुवीकरण के साथ–साथ प्रभाव व शक्ति के लिए तीव्र प्रतिस्पर्धा भी देखने को मिलती है। जातियों में संघर्ष को दो श्रेणियों में व्यक्त कर सकते हैं।

1. **अंतर जातीय संघर्ष** :– संख्यात्मक रूप से न्यूनाधिक अलग–अलग जातियों में शक्ति व प्रभाव के लिए प्रतिस्पर्धा प्रायः सभी विधानसभा क्षेत्रों में देखी जा सकती है। इस अंतर जातिय संघर्ष में अलग–अलग विधानसभा क्षेत्रों में अलग–अलग जातियों हो सकती हैं। इस अंतरजातीय प्रतिस्पर्धा की दो प्रमुख कारण हैं। प्रथम, यह विश्वास कि अमुक जाति ने उसके हितों को नुकसान पहुंचाया है इस कारण से प्रतिस्पर्धा। द्वितीय, राजनीतिक वर्चस्व को लेकर अधिकाधिक शक्ति अर्जित करने के लिए।
2. **अंतरा जातीय संघर्ष** :–जाति के राजनीतिकरण का एक स्वाभाविक परिणाम यह है कि एक ही जाति के अंदर पद प्रतिष्ठा एवं नेतृत्व को लेकर प्रतिस्पर्धा स्वाभाविक है। अंतरा जातिय संघर्ष का कारण – जाति के स्थापित संभ्रांत वर्ग में प्रतिस्पर्धा व स्थापित संभ्रांत के विरुद्ध नव संभ्रांत का उभार है। इस प्रतिस्पर्धा से आमजन का कोई सरोकार नहीं होता है किंतु नेतृत्व गुटबाजी कर आमजन को अपने अपने साथ जोड़ने का प्रयास करता है। प्रायः एक निर्वाचन क्षेत्र में अंतरा जातीय प्रतिस्पर्धा बहुसंख्यक जातियों में अधिक पाई जाती है और संख्यात्मक रूप से कम जातीयों में इसका स्तर अपेक्षाकृत कम होता है। बानसूर विधानसभा क्षेत्र से यह स्पष्ट होता है कि बहुसंख्यक जाति गुर्जरों के मध्य अंतर जातीय संघर्ष विद्यमान है।

**निश्कर्श** – जाति भारतीय समाज के संगठनात्मक ढॉचे का आधार होने के कारण निर्वाचकीय राजनिति जाति को प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से अपनी ओर खींचती है। निर्वाचकीय राजनीति ने जातियता को दो स्तरो पर विकसित किया है। प्रथम – जाति का राजनीतिकरण और द्वितीय – जातियों के मध्य अंतःक्रिया। जाति के राजनीतिकरण ने ग्रामीण व निरक्षर भारतीय समाज में राजनैतिक चेतना पैदा की है। राजनीतिक जागृति ने जातियता के दूसरे स्तर– जातियो के मध्य ध्रुवीकरण व संघर्ष को जन्म दिया

है। ध्रुवीकरण व संघर्ष के उपर्युक्त सभी आयाम सभी निर्वाचन क्षेत्रो में कम या अधिक मात्रा में विद्यमान होते है। ध्रुवीकरण व संघर्ष के इंगित आयामो द्वारा निर्वाचकीय राजनीति में जाति की भूमिका को बेहतर ढंग से समझा जा सकता है।

**सन्दर्भ :–**

1. रजनी कोठारी – कास्ट इन इंडियन पॉलिटिक्स ओरिएण्ट लॉगमैन 1970
2. जौया हसन द्वारा संपादित पार्टी एण्ड पार्टी पॉलिटिक्स इन इंडिया – ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस नई दिल्ली –2002
3. पीटर आर डिसूजा द्वारा संपादित – इंडियन पॉलिटिकल पार्टी, सेग पब्लिके"ान, नई दिल्ली – 2006